

साहित्य के समाजशास्त्र की परम्परा और हिन्दी दलित साहित्य का समाजशास्त्र

डॉ० यशवन्त वीरोदय,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

साहित्य विश्लेषण की समाजशास्त्रीय दृष्टि, साहित्य विश्लेषण की विशुद्धतावादी सौन्दर्यशास्त्रीय (Pure Aesthetics) दृष्टि की असंगतियों को उजागर करती है और प्रश्न करती है कि 'क्या यह दृष्टिकोण साहित्य की सत्ता को उसकी सम्पूर्णता में उद्घाटित करने में समर्थ है?'¹ यदि यह दृष्टि समर्थ नहीं है तो साहित्य को उसके समस्त स्रोतों, युग, परिवेश और विचारधारा से काटकर शुद्ध साहित्यिक मूल्यों के आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन करना कहाँ तक उचित है? यद्यपि कि 'नई समीक्षा' (जो कि कॉलरिज, एजरा पाउण्ड, टी०एस०इलियट, आई०ए०रिचर्ड से प्रभावित एक अमरीकी समीक्षा आन्दोलन है) के पक्षधर विद्वानों की यह मान्यता है कि यह 'समीक्षा को उस अवांछनीय भार से मुक्त करती है जो परम्परा, युग, कवि की जीवनी, विचारधारा आदि के अध्ययन के नाम पर, काव्य-सौंदर्य से उदासीन रहते हुए उस पर लादा जाता है।'² लेकिन सही मायने में यदि देखा जाय तो इस प्रकार के विशुद्ध सौन्दर्यशास्त्र के आग्रह के नाम पर साहित्य को मूर्त से अमूर्त बनाने का प्रयास है साथ ही साहित्य को उसके जीवन स्रोत और परिवेश से अलग करने का प्रयास है। इस विशुद्ध सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि में साहित्य की सम्पूर्ण सत्ता का बोध नहीं होता है, यही वह महत्वपूर्ण बिन्दु है जहाँ साहित्य विश्लेषण की समाजशास्त्रीय दृष्टि, अपने विशाल कैनवास/फ्रेम के साथ हमें अपनी पहचान कराती है।

'साहित्य के समाजशास्त्र की मुख्य प्रवृत्ति समग्रतावादी है, वह साहित्य के सभी रूपों और पक्षों को समग्रता में समझने पर जोर देता है।'³ साहित्य के समाजशास्त्र या समाजशास्त्रीय दृष्टि का मुख्य लक्ष्य साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या करना है। साहित्यिक कृतियाँ सामाजिक संकेत होती हैं। 'फॉस्टर और केनफोर्ड ने लिखा है कि एक गम्भीर समाजशास्त्री के लिए बड़े से बड़ा कलाकार भी केवल समाज के बारे में सूचना देने वाला होता है।'⁴ इस प्रकार साहित्य के समाजशास्त्र में समाज प्रमुख है, साथ ही सामाजिक गतिविधियों, युग-परिवेश, विचारधारा की सामाजिक-उपादेयता की व्याख्या भी 'साहित्य के समाजशास्त्र' के अन्तर्गत की जाती है।

बकौल मैनेजर पाण्डेय 'साहित्य-प्रक्रिया के मुख्यतः तीन पक्ष हैं : लेखक, रचना और पाठक। साहित्य के समाजशास्त्र में इन तीनों का विवेचन होता है, और इनके आपसी संबंधों का भी, जिसमें साहित्य के लेखन, प्रकाशन, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था की भूमिका स्पष्ट होती है।'⁵ साहित्य-जगत् में सक्रिय लेखक, रचना और पाठक के संबंध में समाजशास्त्रीय दृष्टि से निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैं -

- कृति/रचना एक सामाजिक उत्पाद है।
- लेखक सामाजिक परिवेश की उपज है।
- पाठक सामाजिक कृतियों से प्रभावित होता है।

- समाज 'लेखक, रचना और पाठक' तीनों को प्रभावित करता है।

साहित्य के समाजशास्त्र के स्वरूप को समझने के लिए, समाज से साहित्य के सम्बन्ध की व्याख्या में सक्रिय दृष्टियों की समझ होना जरूरी है। बकौल मैनेजर पाण्डेय "आजकल 'साहित्य के समाजशास्त्र' के क्षेत्र में तीन दृष्टियाँ सक्रिय हैं—

1. साहित्य में समाज की खोज।
2. समाज में साहित्य की सत्ता और साहित्यकार की स्थिति का विवेचन।
3. साहित्य और पाठक के संबंध का विश्लेषण।"⁶

इन तीनों दृष्टियों के सम्मिलित रूप से ही साहित्य के समाजशास्त्र का स्वरूप समझा जा सकता है।

मुक्तिबोध जब साहित्य विश्लेषण की दृष्टि पर विचार करते हैं तो उनकी नजर में वे लोग अपराधी हो जाते हैं जो साहित्य को केवल सौन्दर्यशास्त्रीय नजरिए से देखना पसंद करते हैं। वे कहते हैं "जो लोग साहित्य के केवल सौन्दर्यात्मक मनोवैज्ञानिक पक्ष को चरम मानकर चलते हैं वे समूची मानव सत्ता के प्रति दिलचस्पी न रख सकने के तो अपराधी हैं ही, साहित्य के मूलभूत तत्व, उनके मानवी अभिप्राय तथा मानव विकास में उनके ऐतिहासिक योगदान अर्थात् दूसरे शब्दों में साहित्य के स्वरूप—विश्लेषण तथा मूल्यांकन न कर पाने के भी अपराधी है।"⁷ मुक्तिबोध जिन सन्दर्भों में ये बात कह रहे हैं वह उनकी सामाजिक संवेदना की उपज है। साहित्य के समाजशास्त्र में, समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और नैतिक दृष्टि को कैमरे की आँखों में बन्द करने की कोशिश की जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि "साहित्य विश्लेषण की समाजशास्त्रीय दृष्टि या

साहित्य के समाजशास्त्र का अर्थ हुआ, साहित्य को उसके सामाजिक स्रोतों के साथ उसकी सूक्ष्म सामाजिक अन्तर्वस्तु को मद्देनजर रखते हुए, एक जीवन्त रचनाशीलता के रूप में देखना, और उसको अपने विश्लेषण का विषय बनाना।"⁸ यह दृष्टि मूलतः सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि है जो किसी वस्तु का अध्ययन देश और काल के परिप्रेक्ष्य में करती है। विवेच्य विषय में अन्तर्विरोध का विश्लेषण करके वैज्ञानिक ढंग से प्रतिक्रिया और प्रगति के तत्वों को अलग-अलग छाँटती है।

यह बहुआयामी कार्य तभी संभव हो सकता है जब साहित्य को समाज के भीतर स्थित होकर देखा-परखा जाय और "इसके लिए एक ऐसे समाजशास्त्र की मदत ली जाय जो इस कठिन कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता रखता हो"⁹ इस संदर्भ में संस्कृति-कर्मियों और समाजशास्त्रीयों के बीच संवाद होना आवश्यक है और लाभकारी भी। आज के भारत में मूल्यांकन के ह्रास के सामाजिक कारण को समझने के लिए और स्वार्थपरक जगत में मूल्यांकन की चेतना जगाने के लिए यह संवाद एक आवश्यक शर्त है।

'हिन्दी दलित साहित्य का समाजशास्त्र' विषय को सम्पूर्णता में जानने-समझने के लिए सबसे पहले 'साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन के आरम्भ और विकास को समझना महत्वपूर्ण है। साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन का आरम्भ 'समाज से साहित्य के सम्बन्ध की खोज' के साथ हुआ था। इस चिंतन के विकास में अग्रगामी भूमिका निभाने वाली क्रान्तिकारी नारी 'मादाम स्तेल' (1766-1817) ने 'साहित्य की उत्पत्ति में समाज की भूमिका' और 'समाज पर साहित्य के प्रभाव' का विवेचन किया था। "उन्होंने साहित्य के जातीय स्वरूप और समकालीन राजनीति से उसके गहरे संबंध को विशेष महत्व दिया था।"¹⁰ इस चिंतन को अधिक व्यवस्थित रूप देने वालों में साहित्य के समाजशास्त्र के प्रवर्तक इपॉलित अडोल्फ तेन (1828-93) का नाम प्रमुख है, इसी

कड़ी में लियोलावेंथल, लुसिएं गोल्डमान (1913–1971) एवं रेमण्ड विलियम्स (1921–88) का समाजशास्त्रीय चिंतन भी प्रमुख है, इन्हीं लोगों के सम्मिलित प्रयास से साहित्य के समाजशास्त्र की नयी धारा साहित्य जगत में प्रवाहित हुई है।

अगर हम भारतीय संदर्भ में विचार करें तो बकौल ब्रजरंजन मणि "हाल के सालों में भारतीय इतिहास और समाज पर मौलिक महत्व के कुछ काम हुए हैं। 'प्राचीन औपनिवेशिक' और 'आधुनिक भारत' को अब तक जिस तरह समझा-समझाया गया है उससे अलग। स्थापित वाम, दक्षिण और उदार लोकतांत्रिक के घोषित-अघोषित ऐतिहासिक दृष्टिकोण और प्रतिमानों के करीब-करीब विपरीत। जिन लोगों ने इस नई तरह के समाजशास्त्रीय इतिहास लेखन में अपनी-अपनी तरह से योगदान किया है उनमें उल्लेखनीय हैं- जी अलायसीयस, शरद पाटिल, गेल ऑम्बेट, कांचा इलैया, गोपालगुरु, डी नागराज, श्यामलाल, धर्मवीर, एम0एस0राव और मुद्राराक्षस आदि।"¹¹ इन लोगों के अध्ययन चिंतन ने भारतीय समाज, संस्कृति और जमीनी वास्तविकताओं को ज्यादा जीवंत, विश्वसनीय और वैज्ञानिक तरीके से देखने परखने का प्रयास किया है।

बकौल ब्रजरंजन मणि "इतिहास समाजशास्त्र में अबतक काबिज लोग इनके प्रयासों को या तो अनदेखा करने की कोशिश कर रहे हैं या फिर 'पहचान की राजनीति' (Identity Politics) या 'दलित विचारधारा' और इसीलिए 'संकीर्ण' मानकर खारिज कर रहे हैं।"¹² लेकिन इस नए तरह के समाजशास्त्रीय लेखन से 'दलित साहित्य के समाजशास्त्र' को एक नई दिशा जरूर मिली है, जिसे हम ' भारतीय मूलधारा के समाजशास्त्र की खोज' या 'प्रतिरोध का समाजशास्त्र' नाम दे सकते हैं।

'साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन' का आरम्भ ही 'प्रतिरोधी-चेतना-निर्माण' के लिए हुआ। फ्रांस में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की परम्परा व्यवस्थित रूप से मादाम स्तेल (1766–1817) की पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार' – (1800 ई0) से शुरू हुई। इस क्रान्तिकारी महिला ने नेपोलियन की तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष किया, जिसके कारण उन्हें फ्रांस छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। मादाम स्तेल ने साहित्य के माध्यम से 'सामाजिक-परिवर्तन' पर बहुत जोर दिया। "समकालीन फ्रांसीसी साहित्य पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि फ्रांस की राजनीति में उभरती जनतांत्रिक चेतना की फ्रांसीसी साहित्य में अभिव्यक्ति जरूरी है। उस समय फ्रांसीसी साहित्य में आम जनता को विशेषतः किसानों को उपहास का पात्र समझा जाता था। उनको केवल कामेडी पात्रों के रूप में साहित्य में जगह मिलती थी। इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए मादाम स्तेल ने लिखा कि साधारण जनता और किसानों को ट्रेजडी जैसी गंभीर विद्या की रचनाओं में प्रधान पात्रों के रूप में लाना जरूरी है। उन्होंने साहित्य में 'महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनों' की अभिव्यक्ति की माँग करते हुए न्याय व स्वतंत्रता के लिए चलने वाले आन्दोलनों के चित्रण को आवश्यक माना है।"¹³

अगर हम भारतीय संदर्भ में परम्परागत हिन्दी साहित्य पर विचार करें तो पाते हैं कि यहाँ भी साहित्य में केवल आभिजात्य तत्वों की ही प्रधानता मिलती है। प्राचीन नाट्य साहित्य में तो उच्च कुलोत्पन्न नायक की ही अनिवार्यता बतायी गयी है। यदि कहीं दलित पात्रों का जिक्र आ भी गया है तो सेवक, अनुचर पात्र या खलनायक के सहचर के पात्र के रूप में। जयशंकर प्रसाद के नाटक इसके उदाहरण हैं। अगर दलित साहित्य को छोड़ दिया जाय तो हिन्दी साहित्य में दलित मुख्यपात्र या नायक के रूप में नगण्य है। दलित यदि कहीं किसी पात्र के रूप में आ भी गये हैं तो

उनकी मूल समस्याओं या मनोवैज्ञानिक समस्याओं को न तो सही नजरिए से देखा गया है, न ही उनका सही चित्रण ही हुआ है।

प्रेमचन्द ने इस क्षेत्र में काम किया है और निश्चय ही उनको यह श्रेय मिलना चाहिए कि हिन्दी साहित्य में दलित जीवन पर सबसे ज्यादा उन्होंने ही कलम चलायी है लेकिन वे भी दलित मनोविज्ञान को पकड़ नहीं पाये हैं, राजेन्द्र यादव जैसे चिंतकों का उनपर 'कफन' कहानी के संदर्भ में यह आरोप है कि क्या 'घीसू' और 'माधव' अपनी कहानी खुद लिखते तो उसका रूप भी ऐसा ही होता जैसा 'कफन' कहानी में प्रेमचन्द्र ने दिखाया है। बकौल राजेन्द्र यादव "मैं भी उन महान और दिग्गज रचनाकारों (प्रेमचन्द) की कालजयी रचनाओं को उतनी ही श्रद्धा और प्रशंसा से देखता हूँ जितना कोई भी प्राध्यापक देखता है, मगर सवाल तो उठा ही सकता हूँ कि अगर 'होरी' या घीसू-माधव अपनी कहानियाँ खुद लिखते तो क्या उनके रूप यही होते? यह भी हमें नहीं भूलना चाहिए कि अपनी सारी सद्भावना, सरोकार और सहानुभूति के साथ प्रेमचन्द भी उसी वर्ग के थे जिस वर्ग के उनके पाठक या समीक्षक। एक ने लिखा, दूसरे ने सराहा और तीसरे ने उसे कालजयी सिद्ध कर दिया। राजनीति, समाज, साहित्य में सिर्फ वे ही हमेशा हमारी नुमाइंदगी करते रहेंगे या स्वयं हमें भी कुछ अपनी बात बोलने देंगे"¹⁴ डॉ० धर्मवीर ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द : सामन्त का मुन्शी' में राजेन्द्र यादव द्वारा उठाये गये प्रश्नों के जवाब में यह दिखाने का प्रयास किया है कि वास्तव में 'घीसू' और 'माधव' अपनी कहानी खुद लिखेंगे तो उनका रूप कैसा होगा। डॉ० धर्मवीर ने इस पुस्तक में दलित मनोविज्ञान को पकड़ा है और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सही नजरिए से देखने का प्रयास किया है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन में मादाम स्तेल का जोर इस बात की ओर है कि

साधारण जनता और किसानों को ट्रेजडी जैसी गंभीर विधा की रचनाओं में प्रधान पात्रों के रूप में लाया जाय। दलित साहित्य के अन्तर्गत भी ये बातें महत्वपूर्ण हो उठती हैं, क्योंकि साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन, समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व की लड़ाई लड़ने के लिए यह आवश्यक है कि ट्रेजडी जैसी गंभीर विधा के रूप में दलितों को प्रधान पात्रों के रूप में लाया जाय। हिन्दी दलित साहित्य के माध्यम से यह काम हो रहा है।

फ्रांसीसी विचारक तेन 'साहित्य के समाजशास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने 'अंग्रेजी साहित्य का इतिहास' - (1863), 'कला का दर्शन' और 'इटली की यात्रा' जैसे ग्रंथों की रचना की। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास भी भूमिका में उन्होंने लिखा "हम दस्तावेजों का अध्ययन मनुष्य को जानने के लिए करते हैं। 'मिथक-माला' और 'भाषा' का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। महत्वपूर्ण है उनके पीछे छिपा वह मानव समुदाय जो अपनी आवश्यकता और विवेक के अनुसार कल्पनाओं और शब्दों को संयोजित करता है। हमारा उद्देश्य उनमें छिपे मनुष्यों की खोज करना होता है।"¹⁵ तेन ने **प्रजाति, परिवेश और युग** को साहित्य के विकास का चरण माना है।

तेन के बाद जर्मनी के आलोचनात्मक समाजशास्त्री 'लियोलावेंथल' का नाम महत्वपूर्ण है। लियोलावेंथल की मान्यता है कि लेखक अपने समय की ऐतिहासिक स्थितियों का या तो विरोध करता है या समर्थन। वह केवल तटस्थ वर्णन या चित्रण नहीं करता है।

'लियोलावेंथल' ने 'वाल्टर बेंजमिन' के इस मत का विरोध किया कि इतिहास में हमेशा विजेताओं की आवाज मुखरित होती है। "उनकी राय में वेंजमिन का यह कथन साहित्य के बारे में सही नहीं है, क्योंकि सच्ची कला में प्रायः पराजितों की आवाज और उनकी विजय की

आकांक्षा व्यक्त होती है। अच्छा साहित्य वही होता है जिसमें सामाजिक ऐतिहासिक अनुभवों की गहरी अभिव्यक्ति होती है और मानव जीवन की दशाओं के बारे में अन्तर्दृष्टि देने की क्षमता होती है।¹⁶ उन्होंने यह भी बताया कि पूँजीवादी समाज में वही कला महत्वपूर्ण है, जिसमें विरोध का स्वर है, आज की अच्छी रचनाओं में पूँजीवादी व्यवस्था से पीड़ित और प्रताड़ित व्यक्ति की आवाज सुनाई पड़ती है।

इस तरह देखा जाए तो दुनिया का अधिकांश सर्वश्रेष्ठ साहित्य आजादी की चाह के लिए ही लिखा जाता है। अगर हम भारतीय संदर्भ में बात करें तो यहाँ के दलित साहित्य में भी सदियों से प्रताड़ित, शोषित, दमित, पराजित दलितों की आवाज और आकांक्षा व्यक्त होती है। दलित साहित्य में सामाजिक ऐतिहासिक अनुभवों की गहरी अभिव्यक्ति है और मानव जीवन की दशाओं के बारे में अपनी अलग अंतर्दृष्टि है, इसमें विरोध और आक्रोश का स्वर है इसमें ब्राह्मणवादी व्यवस्था से पीड़ित और प्रताड़ित व्यक्ति की आवाज सुनाई देती है, इसमें व्यवस्था से आजादी या स्वतंत्रता के साथ समता और बंधुत्व की भावनाओं की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है।

‘साहित्य के समाजशास्त्र’ की चिंतन परम्परा में द्वितीय विश्व युद्ध की भयानक त्रासदी के बाद ‘लूसिए गोल्डमान’ (1913–71 ई0) का चिंतन सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने एक व्यापक ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का निर्माण किया। उन्होंने ‘संस्कृति के समाजशास्त्र’ का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसमें समाज से संस्कृति के ऐतिहासिक, सामाजिक और सौन्दर्यबोधीय संबंधों की खोज की दृष्टि विकसित की।

गोल्डमान के ‘संस्कृति के समाजशास्त्र’ के आधार पर यदि हम हिन्दी दलित साहित्य पर विचार करें तो पाते हैं कि हिन्दी दलित साहित्य, वस्तुतः दलित मुक्ति के व्यापक ‘सामाजिक

साँस्कृतिक आन्दोलन’ का एक अंग है, क्योंकि इसका अपना एक अलग सामाजिक-साँस्कृतिक आधार (Social Cultural Stand) है। हिन्दी दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, द्विज संस्कृति और उसके वर्चस्व के खिलाफ है। प्रसिद्ध दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि की मान्यता है कि “14 अक्टूबर 1956 के दिन डॉ0 अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेते समय जो 22 प्रतिज्ञाएँ की थी वही दलित साहित्य की धार्मिक साँस्कृतिक मान्यताओं का आधार है।¹⁷ इस प्रकार दलित संस्कृति की अपनी अलग ऐतिहासिक सामाजिक विशिष्टता है जिसके कारण परम्परागत सौन्दर्यबोध से अलग इसका अपना सौन्दर्यबोध है।

बकौल ओमप्रकाश वाल्मीकि, पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के “वाक्यं रसात्मकं काव्यं” को सूत्र की तरह दोहराता है।¹⁸ पारम्परिक साहित्य का मूल प्रयोजन है— ‘आनन्द के लिए रसोत्पत्ति’। “एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुःख, वेदना से साक्षात्कार करता है वह आनन्ददायक कैसे हो सकता है।¹⁹ इसी कारण दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का स्वरूप पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न है जो ऐतिहासिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उपजा है, यह वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध का सौन्दर्यशास्त्र है।

गोल्डमान ने साहित्य के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए एक और अवधारणा को जन्म दिया, वह है— ‘विश्व दृष्टि’ की अवधारणा। उनके अनुसार “एक वर्ग या समूह की जीवन जगत के बारे में सुसंगत दृष्टि ही विश्वदृष्टि है, जिसका विकास कोई समूह या वर्ग ही सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया में करता है।²⁰ गोल्डमान विश्व दृष्टि को सामाजिक वर्ग की ऐतिहासिक स्थितियों से संबद्ध मानते हैं। गोल्डमान के अनुसार किसी वर्ग की विश्वदृष्टि की संरचनाओं

से कृति के भीतर रचित संसार की संरचनाओं की समानधर्मिता होती है।

दलित साहित्य में संघर्ष पराजय और निराशा के बाद जो विश्व दृष्टि उभरती है उसका फलक बहुत व्यापक है। आज दलित साहित्य की नजरें अमेरिका (ब्लैक लिटरेचर), अफ्रीका की यात्राएं करने के बाद पूरे विश्व पर केन्द्रित हैं और जहाँ-जहाँ असमानता और शोषण का बोलबाला है वहाँ उसकी नजर है, वह पूरी दुनिया के गरीबों के खिलाफ लामबन्द पूँजीवाद या भारतीय संदर्भों में कहें तो वर्ण जाति वर्चस्व का विरोध करता है और किसी भी प्रकार की असमानता को चाहे वह नश्लभेद को लेकर हो या जातिभेद को लेकर, वह सामाजिक हो, राजनैतिक हो या धार्मिक हो अनुचित मानता है। इस प्रकार दलित साहित्य की विश्वदृष्टि बहुत व्यापक है।

संदर्भ

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र, लेख— 'समाजशास्त्रीय विश्लेषण', पुस्तक — राम की शक्ति पूजा की व्यावहारिक समीक्षा, संपादक — डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित — 1998, पृ० 86
2. वही, पृ० 87
3. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — 1989, पृ० गपपप
4. वही, पृ० 4
5. वही, पृ० गपपप
6. वही, पृ० 12
7. ग०मा०मुक्तिबोध — नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ० 112
8. डॉ० शिवकुमार मिश्र, लेख— 'समाजशास्त्रीय विश्लेषण', पुस्तक — राम की शक्ति पूजा की व्यावहारिक समीक्षा, संपादक — डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित — 1998, पृ० 88
9. वही, पृ० 88
10. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — 1989, पृ० 13
11. ब्रजरंजन मणि, लेख — 'श्रमणवादी परम्परा मार्क्सवाद और फुले', पत्रिका — हंस, संपादक—राजेन्द्र यादव, अगस्त 2002, पृ० 26
12. वही, पृ० 26
13. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — 1989, पृ० 118
14. राजेन्द्र यादव, हंस, अगस्त 2004, पृ० 7
15. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — 1989, पृ० 123
16. वही, पृ० 135
17. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, 2001, पृ० 75
18. वही, पृ० 48
19. वही, पृ० 50
20. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — 1989, पृ० 148